बूढ़ेका ब्याह ।

(एक शिक्षाप्रद पद्य-कहानी ।)

लेखक,

देवरी (सागर) निवासी

सय्यद अमीरअली (मीर)

डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स,

धर्मजयगढ (विलासपुर) ।

प्रकाशक,

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय-बम्बई ।

कार्तिक १९७१

प्रथमावृत्ति] अक्टूबर १९१४ [मूल्य ।=)

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar
Press 23, Kolbhat Lane, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor Jain Granth
Ratnakar Karyalay, Hirabag, Bombay.

समर्पण

जो यौवनका लूट चुके सुख,
अब मलते रहते हैं हाथ।
'बाबा' कहलाते पर रहती,
विषयवासना जिनके साथ॥

देख किशोरीको हो जाते
जिनके आनन-कूप स-नीर।
उन बूढ़ोंके कम्पित करमें,
करे समर्पण सादर 'मीर'॥

निवेदन।

इस समय 'भारतवर्ष उन्नत कैसे हो' यह एक महत्त्वका प्रश्न देशवासियोंके सामने उपस्थित है। देशोन्नतिके अनेक बाधक कारणोंमे से एक कारण अनमेल-विवाहकी बुरी चाल भी है। अनेक अनुचित विवाहोंमे से बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह प्रमुख हे, जिनसे सामाजिक बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं। भावी सतानोंका या तो अभाव हो जाता है, अथवा भाररूप सतान उत्पन्न होते है। इसी दोष पर दृष्टि रखकर यह छोटीसी पुस्तक लिखी गई है। इसका लक्ष्य इस बात पर है कि —

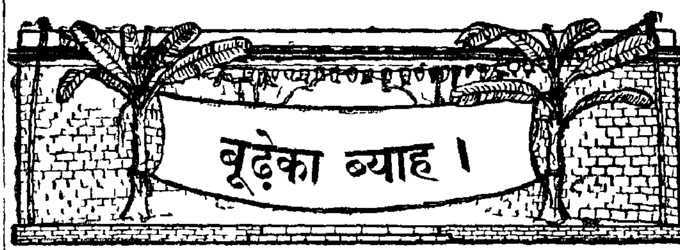
ऊसर धरतीमें होना है, जैसे पुष्ट बीजका नाश,
वैसे ही उर्बरा भूमिमे, घुने बीज का सत्यानाश।
धरती और बीजको चुनकर, लाभ उठाते चतुर किसान,
उसी तरहसे वर-कन्याका, उचित मेल करते धीमान॥

जिस समय यह 'बूढेका ब्याह' 'जैनहितैषी' मे क्रमश प्रकाशित कराया गया था उस समय इस पर जिन महाशयोंने प्रसन्नता प्रकट की थी उन्हे, तथा इसके प्रकाशक और प्रसिद्ध चित्रकार प० गणेशरामजी मिश्रको मै हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपासे यह अबकी बार सचित्र पुस्तकाकार (कुछ परिवर्धित और परिशोधित रूपमे) प्रकाशित हो सका। यदि एक अल्पज्ञ मुसलमान-लेखककी लिखी हुई हिन्दी पुस्तक कुछ कामकी निकली, तो मे अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

विनयावनत—

धर्मजयगढ़ — भाद्र कृ० तृतीया स० १९७१ वि०

मीर — देवरी (सागर) निवासी।



बूढ़ेका ब्याह ।

(पद्य-कहानी)

प्रथम परिच्छेद ।

[१]

'धनीराम' मिर्जापुरवाले, करते थे घरमें आराम,
आया उनको ध्यान अचानक, देख विपुल अपना धनधाम
दैवदयासे मुझे आज है, सब प्रकारका वैभव प्राप्त,
कारबारके साथ साथ है, मेरा सुयश जगतमें व्याप्त ॥

[२]

पुत्र-पौत्र-बधुओंसे यद्यपि, मेरा घर है भरा हुआ,
दश पीढ़ी तकके खानेको, लाखोंका धन धरा हुआ।
किन्तु नही है नयनरञ्जिनी, गृहिणी यही अनर्थ हुआ,
जिससे इतना वैभव प्रस्तुत, रहते भी सब व्यर्थ हुआ ॥

[३]

विनयवान् सब पुत्र पौत्र है, शीलवती बधुयें सारी,
दासी-दास हजारों हाजिर, रहते है आज्ञाकारी ।
किन्तु नहीं है नारी जिससे, नर आधा कहलाता है,
बिना ज्योतिका दीपक जैसे, दीन मलिन दिखलाता है ॥

[४]

समय रामके वननिवासका, कभी नहीं काटा कटता,
साथ न यदि वैदेही[1] होती, दुःख और दूना बढ़ता।
राज्यसौख्य तज पाण्डव यद्यपि, बने बिचारे वनवासी,
साथ द्रोपदी थी इस कारण, रही वहाँ भी अनुदासी॥

[५]

आते ही यह ध्यान सेठ जी, दुखी हुए मन-ही-मनमें,
स्वर्गवासिनी सेठानीकी, सुधि आगई उसी क्षणमे।
कल्प-मञ्च[2] पर आकर पिछले, एक एक सुख खड़े हुए,
लगे देखने उन्हे सेठजी, आकुल व्याकुल पड़े हुए॥

[६]

तब तो समझा धनीरामने, भरा हुआ भी घर वीरान,
अपनी जन्म-पत्रिका खोजी, मन-ही-मनमे कर कुछ ध्यान।
जन्म-कालसे लेखा करके, गई उमरकी की जब जाँच,
साठ बरस पूरे होनेको, तब बाकी थे पूरे पाँच॥

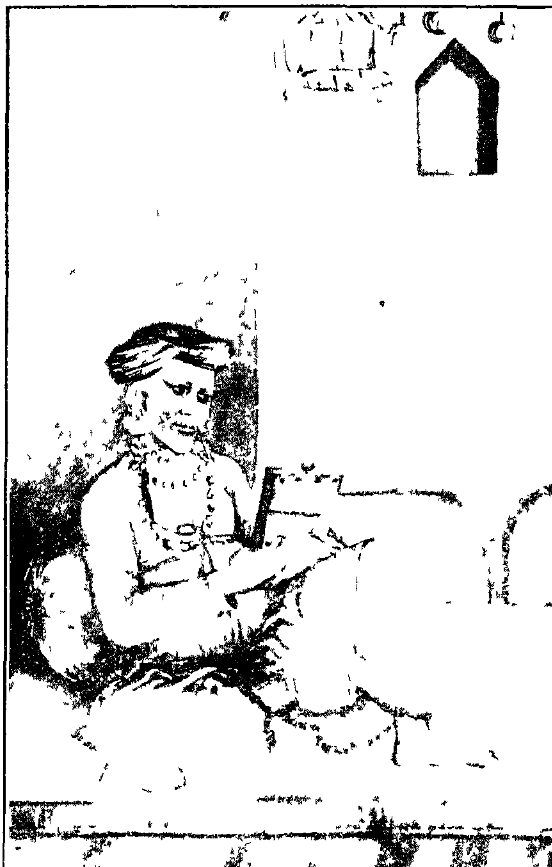
[७]

चींटीको मिल जाता जैसे, जलमे तिनकेका आधार,
वैसे ही यह मिला सहारा, हुआ सेठको हर्ष अपार।
तकियेसे टिक लगे ऐठने, अपनी मूछे बारम्बार,
भावी सुख मिलनेकी विधिका, उसी दशामें किया विचार॥

[८]

सूदनलाल पुरोहितजीको, त्वरित बुलाने भेजा दास
इधर उठाकर लगे देखने, रक्खा था जो दर्पण पास।
मुखमण्डल पर देख सफ़ेदी, बालोंकी कुछ हुए उदास,
लेकिन धनका ध्यान किया तो, आशाका फिर हुआ विकास

१ सीता। २ कल्पनाकी बैठक पर।



[चित्रकार—श्रीयुक्त प० गणेशराम मिश्र]

इधर उठाकर लगे देखने रक्खा था जो दर्पण पास।"

(पृष्ठ [illegible])

[९]

नब तक पहुँचे विप्र महाशय, पोथी पत्रा लेके साथ,
जाता नहीं शिकारी बनमें, कभी घूमने खाली हाथ।
नत मस्तक कर उच्चासन पर, बैठाया करके सत्कार,
स्वार्थ-साधनाके अवसर पर, सब ही करते शिष्टाचार ॥

[१०]

विप्रदेव देकरके आशिष, कहने लगे वचन गम्भीर,
"कहो अन्नदाता है मंगल?" हुए सेठजी जरा अधीर।
कहा "और सब मंगल लेकिन, एक दु:ख है द्विजमहाराज,
अगर आप चाहे तो कर दे, उसे मेट सारे सुखसाज ॥"

[११]

बोले द्विजवर सदय हृदय हो, "हॉ कहिए क्यों हुए उदास?
काम कौनसा वह अशक्य है, जिसकी युक्ति न मेरे पास?
पुत्र-पौत्र है वधुओंवाले, सब प्रकार हो वैभववान,
चिन्ता बड़ी कौनसी ऐसी, हुए आप इतने हैरान ॥"

[१२]

कहा सेठने "यही कठिन है, जॉच जगतमे रही नहीं,
सुखी जानते वे सबको है, व्यथा जिन्होंने सही नही।
उन्हे नहीं होता है अनुभव, जिन पर घटना घटी नही,
पीर पराई वे क्या जाने, जिन्हे बिबाई फटी नहीं ॥

[१३]

"आप जानते मुझे सदासे, छिपा आपसे भेद नहीं,
है अचरज जो पडित होकर, जाना मेरा खेद नहीं।
सुना कभी पत्नीसे वंचित, शोभा पाता पुरुष कहीं?
उस प्रसूनकी चाह किसे हो, जिसमें होती गन्ध नहीं ॥

[१४]

"कभी प्रभाकर प्रभा न छोड़े, चन्द्र चन्द्रिकासहित रहे ,
सदा शचीके साथ इन्द्र भी, स्वर्गसभामें मुदित रहे ।
दूर दूरके साथी सब हैं, देते सच्चा साथ नहीं,
आप सोच ले स्वयं कौन सुख.आज हमारे हाथ नहीं ॥"

[१५]

इतना सुनकर समझ गये द्विज, यह पूरा है उल्लूनाथ,
अच्छा हुआ आज जो आई, यह सोनेकी चिड़िया हाथ।
मिली दुधारू गाय भाग्यसे, इसे खूब दुहना होगा,
मुझे मिलेगा माल, इसे, बन्धनका दुख सहना होगा ॥

[१६]

पढ़नेसे उसको क्या होता, जिसका शुद्ध विचार नहीं,
उस पादपकी बढतीसे क्या, होता जिसमें सार नहीं ।
भोगा कितना विषय सेठने, उसे तसल्ली हुई नहीं,
ऊपर दिखी सफेदी तो भी, अन्तर स्याही गई नहीं ॥

[१७]

अवसरके अनुकूल सोचकर, बोले वचन मधुर द्विजराज
मानों बैठ सुना रहे हों, अर्जुनको गीता वृजराज ।
"दुखी हुआ मैं सुनकर जो कुछ,श्रीयुतने निज कथा कही,
मुझको ब्राह्मण मत कहना यदि, मेरे रहते व्यथा रही ॥

[१८]

"आँखोंके रहते भी मगमे, चलते ठोकर खाता हो,
दाना पानी घरमें रहते, भूख-प्यास चिल्लाता हो ।
दिनको सोवे चले रातको, मंजिल दूर बताता हो,
उसे विवेकी कहै कौन जो, बिना किये पछताता हो ॥

[१९]

"क्या जाने क्यों कहा न अब तक,जो दुख सहते आप रहे
शास्त्र-विहित जो पुण्य-कर्म था, उसे समझते पाप रहे।
भाग्यवान् है आप इसीसे, पुत्रोंके भी पुत्र हुए,
अस्सी-नव्वैके जीते हैं, कितने लोग निपुत्र हुए।

[२०]

"साठ साल तक वैद्यवरोंने, पुरुष कहा है पौरुषवान्,
तब तो आप अभी पचपनके, हुए देहसे है बलवान्।
बालोंपरसे आप बुढ़ापा, मान हृदयमें करें न खेद,
कलिमें देखा, हो जाते है, बच्चोंके भी बाल सफ़ेद ॥

[२१]

"जन्मपत्रिका मुझे दीजिए, वर्ष पॉच कम कर दूंगा,
दुष्ट ग्रहोंकी शांति तुष्टि कर, आयुवृद्धिका वर दूंगा।
किसी गृहीको करके राजी, शुभसम्बन्ध मिला दूंगा,
करे अँधेरा दूर भवनका, चन्द्रआननी ला दूंगा ॥"

[२२]

अभयवचन सुन सूदनजीके, हुआ सेठका पुलकित गात,
दिया जरीका सेला अँगा, पगड़ी भी दी नई बनात।
गगा-जमनी फिर थैली दे, चरणकमल पर रक्खा सिर,
"इज्जत मेरी हाथ आपके," कहा,और की श्लाघा फिर ॥

[२३]

"अगम कौन सी जगह जहाँ पर, जाते द्विजका पैर रुके,
ऐसा कौन अशक्य काम है, जिसको ब्राह्मण कर न सके।
दया विप्रकी हो तो होवे, भाग्यहीनके भी सब काम,
इसी लिए है मुझे भरोसा, होगा मेरा शुभ परिणाम ॥

[२४]

"ओछा दिल नहिं करना, दूँगा, जो खर्चा होगा इसमें,"
यों दोनोंने अपनी बातें, कही सुनीं समझीं रसमें।
आशिष देकर गये विप्र घर, "सकुल आप चिर मुदित रहे,
दीन विप्र-गो पले आप घर, शुभ ग्रहके फल उदित रहे॥"

[२५]

अद्भुत महिमा है विरिंचकी, नहीं समझमे कुछ आता,
कहा और कैसे कब कोई, क्या करनेसे क्या पाता।
गुरुसे पाकर वर त्रिशंकुने, कितना कुछ अपमान सहा,
कपट अहिल्यासे भी करके, इन्द्र इन्द्र ही बना रहा॥

[२६]

किसी बुद्धिसे पाप कर्म हो, किसी बुद्धिसे हो उपकार।
कहीं धर्म होता है धनसे, धनसे कहीं बने अपकार।
लेकिन सबमे स्वार्थ प्रबल है, देखा करके खूब विचार,
स्वार्थी जन जो होते है वे, नहीं देखते धर्माचार॥

[२७]

देखो तो बूढेकी बाते, पहुँच चुका यमका फर्मान,
तो भी उसको बना हुआ है, अभी जवानीका अर्मान।
तरुण पुत्र तरुणी बधुये थी, थे उनके भी बहु सन्तान.
लेकिन बिना एक पत्नीके, समझा उसने घर बीरान॥

[२८]

यह सँसार हिंडोला जैसा, क्रमसे चक्कर खाता है,
नीच चढ़ा ऊपरको जाता, ऊँचा नीचे आता है।
जिस भारतके चार वर्णमें, ब्राह्मणको सिरताज कहा,
है अफ़सोस नहीं अब उसमें, पिछला सा अभिमान रहा॥

[२९]

जिनके पूर्व पुरुष औरोंको, धर्मपंथ बतलाते थे,
जिनके चरण-कमल पर मस्तक, राजा रंक झुकाते थे।
उनहीके वंशज अब देखो, ऐसे कुछ बरबाद हुए,
गुणसे खाली हुए मगर हाँ, अवगुणसे आबाद हुए॥

[३०]

जिस समाजके अगुओंमे जब, अनाचार अत्यन्त हुआ,
तब निस्संशय गौरव-गिरिसे, गिरकर उसका अन्त हुआ।
लेकिन जिसका नेतादल जब, सच्चरित्र गुणवंत हुआ,
तब अवश्य वह सुखी समुन्नत, कीर्तिवान् श्रीमंत हुआ॥

[३१]

अगर चाहते मदनजी तो, धनीरामसे कहते यों,
'आमंत्रण यमका आ पहुँचा, तुम अब शादी करते क्यों?
चौथापन है राम भजनका, जिससे कलिमल रहे नहीं,
वहाँ मिले सुख अचल यहाँ भी, चिन्ता ज्वाला दहे नहीं॥'

[३२]

है विचित्र संसार यहाँ जो, इच्छा हृदय उपजती है,
वह प्रयत्न करनेसे सचमुच, सोलह आना मिलती है।
इसीलिए पंडितजन इसमें, मोक्ष-मार्ग अनुसरण करें,
मायाके वश पड़े मूढ़ जन, पाप-पंकमें चरण धरें॥

द्वितीय परिच्छेद ।

[१]

एक बिचारे छैकोड़ीजी, लाखनपुरमें रहते थे,
नमक-तमाखू आदि बेचकर, पेट-पालना करते थे ।
पति-भक्ता पत्नी थी लेकिन, पुत्रसौख्यसे रीते थे,
इकलौती कन्या थी उसको, देख देखकर जीते थे ॥

[२]

जब पत्नी कहती, 'चम्पाकी, कहो करोगे शादी कब ?'
तो कह देते छैकौड़ीजी, 'मेरी मर्जी होगी जब ।
हरे-भरे घरका जब मुझको, मिल जावेगा इच्छित वर,
तब सम्बन्ध करूँगा जिससे, सुखी रहे वह जीवन भर ॥'

[३]

बीच बीचमे यहाँ वहाँसे, बातचीत जब आती थी,
तो क्या जाने किस कारणसे, वह यों ही टल जाती थी ।
पढ़े-लिखे-कुलवाले वरकी, वहाँ दाल नहि गलती थी,
रूप और आरोग्य-शीलकी, चर्चा कभी न चलती थी ॥

[४]

जब चर्चा आती तब पहले, सम्भाषण तो करते थे,
छैकौड़ीजी बिना कहे कुछ, पीछे चुप हो रहते थे ।
बार बारकी ऐसी चुपसे, जान लिया फिर तो सबने,
छैकौड़ीको सोलह आने, घेर लिया है मतलबने ॥

[५]

किसी तरहसे यह सब चर्चा, सूदनजीने सुन पाई,
हर्षित हुए रंक-कर जैसे, घर बैठे दौलत आई ।
अवसर पाकर विप्र महोदय, छैकौड़ीके पहुँचे घर,
उसने किया प्रणाम भक्तिसे, मस्तकको चरणों पर धर ॥

[६]

हो प्रसन्न द्विजवरने उसको, मंगलमय आशीष दिया,
सादर जहाँ बिठाया, बैठे, कुशल क्षेमका प्रश्न किया।
होते है जो स्वार्थसाधु वे, धीरजधारी होते हैं,
जैसे कृषक अन्न धरतीमें, समय देखकर बोते है॥

[७]

पूछा सहज "कहो साहूजी, क्या करते हो तुम व्यापार,
उसमे कितना लाभ तुम्हें है, चलता कैसे कारोबार।"
बोले साहू धीमे स्वरसे, "क्या बतलाऊँ हे द्विजराय,[1]
मुझे ठीक चरितार्थ उक्ति यह, 'ओछी पूँजी खसमें खाय'"

[८]

हो दयार्द्र द्विजवरने उसको, कहा "हृदयमें धरिए धीर,
करता है जब दैव दया तो, टल जाती है सारी पीर।
कुछ बातें करके फिर पूछा, कहो "तुम्हारे क्या सन्तान,"
उत्तर मिला "एक पुत्री हम, दोनोंके प्राणोंकी प्राण॥"

[९]

"दसवाँ बरस लगा है उसको, इससे रहता चिन्तित चित्त,
कैसे कहाँ उसे मै ब्याहूँ, पास नही है मेरे बित्त।
दिया न पुत्र दैवने, देता, जो वृद्धावस्थामें तोष,
क्या जाने गुजरेगा कैसे, जीवन इसका है अफसोस॥"

[१०]

सूदनजीने कहा साहुसे, "झूठा है यह सब संसार,
किसकी जोरू किसके बच्चे, किसका निश्चल कारोबार।
अपनी अपनी करनीका फल, पाते हैं सब राजा-रंक,
यही सोचकर हर हालतमें, रहते हैं ज्ञानी निःशंक॥

१ मालिकको।

[११]

"सुत अथवा हो सुता किसीको, यही गृहीके हैं दो फल,
दोनोंहीसे मिलता सुख-दुख, इसमे केवल दैव प्रबल।
एक सुतासे जनकराजकी, कीर्ति विश्वमे हुई अचल,
सौ पुत्रोसे कुरुराजाने, कहो कौनसा पाया फल?

[१२]

"मर्जी होवे अगर तुम्हारी, तो कन्याका ऐसे घर,
विधियुत ब्याह करादूं जिससे, सुखी रहे वह जीवन भर।"
कहा साहुने "अहो विप्रवर, ऐसे घरका होवे वर,
जो मेरी चम्पाको सुख दे, भूले मेरी नही खबर॥"

[१३]

इस प्रकार मतलबकी बातें, उन दोनोंमें हुई अनेक,
सब विचार मिल गये परस्पर, दोनोंके, दोनों सविवेक।
तत्पश्चात् दिया द्विजवरने, धनीरामका परिचय पूर्ण,
गोत्र-वंश-कुल-शील और, बतलाया गृह धनजनपरिपूर्ण॥

[१४]

सुना साहुने लेकिन जब यह, उमर सेठकी हुई पचास,
चम्पाका भवितव्य सोच तब, मनमें किंचित् हुए उदास।
ताड़ गये द्विजवर साहूकी, मुखचेष्टासे मनका भाव,
तब तत्काल उन्होंने सोचा, मतलब बन जानेका दाव॥

[१५]

कार्यकुशल होते हैं जो जन, सोच समझ करके परिणाम,
नही चूकते कर लेते है, समय देखकर अपना काम।
चम्पाकी ले जन्मपत्रिका, द्वादश[1] घर पर किया विचार,
वर्ग-प्राति कुल गोत्र मिला द्विज, बोले मीठे वचन सुधार॥

१ जन्मकुण्डलीचक्र।

[१६]

"सुनो साहुजी सब प्रकारसे, वर-कन्याका मिलता मेल,
श्रीजी कृपा करेंगे ऐसी, फूल-फलेगी यह शुभ बेल।
पतिसे सुखी रहेगी चम्पा, दसकी होवेगी सरदार,
सकल कुटुम्ब रहेगा वशमे,सम्पति पर होगा अधिकार॥"

[१७]

जिनको नहीं पापका भय कुछ, वे कुमार्गमे जाते हैं,
है तारीफ असलसे बढ़कर, नकल बात बतलाते है।
स्वार्थ-मद्यको पीकर जो नर, मतवाले बन जाते है,
सुनते नहीं लजाते है वे, कहते नहीं लजाते हैं॥

[१८]

कुछ थोड़ासा सोच साहुने, पण्डितजीसे विनय किया,
"जो कुछ कहा आपने उसको, भली भाँति है समझ लिया।
लेकिन उनकी सुतवधुओंसे, कहिए कैसे हित होगा,
उनके रहते चम्पाका, अधिकार नहीं रक्षित होगा॥

[१९]

"धनका होना लोभ बुरा है , इसे न कोई सकता छोड़,
पिता पुत्रसे भाइ भाइसे, प्रीति पुरानी देता तोड़।
न्यायालयमे ऐसे झगड़े, प्रति दिन जाया करते है,
उभय पक्ष ही अपने धनका, धुआँ उड़ाया करते है॥

[२०]

"इसके सिवा न होती है अब, वय लोगोंकी पूर्व समान,
नही साठ भी गत हो पातीं, जीवनका होता अवसान।
वरकी वय जो अधिक न होती, तो भी मन रहता निर्द्वन्द,
आँख देखते मक्खी खाना, कहो करेगा कौन पसन्द?

[२१]

"अभी हमारी चम्पा बाली, सब प्रकार भोली भाली,
दैव करे ना रही कदाचित्, कहीं गोद सुतसे खाली ।
तो कैसे सम्पति पर उसका, राज नियमसे हक़ होगा,
जिसका हो परिणाम बुरा वह, काम बुरा बेशक होगा ॥"

[२२]

"ठीक आपने कहा साहुजी, स्वयँ मुझे भी है यह ज्ञान,
नहीं फेक देता है कोई, गड्ढमे अपनी सन्तान ।
ऐसा आया समय रहा नहिं, द्विजवचनोंका भी विश्वास,
हुई निकम्मी बुद्धि यहाँ तक, ज्योतिषका करते उपहास ॥

[२३]

"झूठ कहा है लोगोंने यह, विधिकी रेख न टलती है,
नही दैव करता है कुछ भी, अपनी इच्छा फलती है ।
वचनावली नीतिकी हमको, नित्य सीख यह देती है,
अल्प आयुकी लाखों जाने, चिन्ता डाइन लेती है ॥

[२४]

"लेकिन जिसको हो सुपास नहिं,उसे सताती कभी फ़िकर,
निश्चिन्तोंके पास न होती, कभी मृत्युकी शीघ्र गुज़र ।
इसी लिए होते थे पहले, दीर्घवयी योगी मुनिवर,
चिन्ता जिनके पास न जाती, हों अब थोड़े ऐसे नर ॥

[२५]

"सुनो, दिलीप दिवाकर-कुलमें, न्यायपरायण पूत हुए,
वयके अन्त समयमें उनको, रघुसे सुत उद्भूत हुए ।
स्वाभाविक है मरना जीना, उसकी चिन्ता नाहक है,
जग बाजार जीव है सौदा, जिसका अन्तक गाहक है ॥

[२६]

"सुनी नहीं प्रह्लाद-कथा क्या, पिता-पुत्रमें लाग हुई,
हुआ बाल बाँका नहिं सुतका, उल्टी शीतल आग हुई।
हॉ, जिसकी वय पूजी उसका, नही कभी उपचार हुआ,
इन्दुमतीके लिए मृत्युका, हेतु फूलका हार हुआ॥

[२७]

"और साहुजी जिसका जिससे, शास्त्रविहित बन्धन होगा,
फिर किस कारणसे उसका नहिं, पतिके धनमे धन होगा।
चम्पाके जीवनका बोझा, जो अपने ऊपर लेगा,
सब प्रबन्ध उसके पालनका, वह अवश्य ही कर देगा॥

[२८]

"शील देख चम्पाका मेरे, सहज हुआ दिलमें यह ख्याल,
किसी हालमें दुखी न होवे, जीवन भर यह रहे निहाल।
तुमने सहज कहा जो मुझसे, तो मैंने दी नेक सलाह,
मानो तो है खुशी तुम्हारी, ना मानो तो क्या पर्वाह?"

[२९]

बोले साहु "निवेदन मेरा, सुनिए शुभचिन्तक द्विजराज,
कहा आपका सिर माथे है, आप न हों इसमें नाराज।
समाधान सब तरह हो गया, अब केवल इतना अ-सुपास,
प्रतिबन्धन हो पास न अपने, कैसे हो तब तक विश्वास?

[३०]

"होगा कैसे कार्य, नहीं है, कानी कौड़ी मेरे पास,
कोरा कर दूँ ब्याह अगर मैं, तो होगा घर घर उपहास।
दुख कंगालीका नहिं होता, अगर मुझे सुत देता दैव,
चाहे वह रहता अनब्याहा, पर मिलता सुख मुझे सदैव॥"

[३१]

समझ साहुके अन्तर्गतको, लेते देख दीर्घ निश्वास,
प्रेमसहित सूदनजी बोले, "कर दूँगा मैं सकल सुपास।
कहिए मुझसे निस्संशय हो, दिलमें नहिं रखिए कुछ भेद,
कितना व्यय होगा सब इसमें, बतलाइए छोड़िए खेद॥

[३२]

"जैसा जैसा आप कहेंगे, सब स्वीकार करा लूँगा,
और आपके वृद्धापनका, पूर्ण प्रबन्ध करा दूँगा।"
"आप सयाने हैं सब जाने, कितना व्यय अनिवार्य नहीं,
सोच समझ ले दो हजारसे, कममें होगा कार्य नहीं॥

[३३]

"कपड़ा-लत्ता-खाना-पीना, स्वागत करना पड़ता है,
रीति पूर्ण करनेको पैसा, बात बातमें लगता है।"
कहा सुनी बहुतेरी होकर, आखिर यह परिणाम हुआ,
डेढ़ हजार सफेदीमें तय, चम्पाका नीलाम हुआ॥

[३४]

इस पर भी कुछ जुदा दलाली, ठहराकर फिर शोधा ब्याह,
बाजे बजने लगे खुशीके, उभय ओर बढ़ गया उछाह।
चम्पाने क्या सोचा होगा, ठहराये जब उसके दाम,
धनीरामके पुत्रोंके भी, जीमें हो सो जाने राम॥

[३५]

खुले खजाने कन्याविक्रय, करें कहें यह पाप नहीं,
औरोंको शरमाते हैं पर, शरमाते हैं आप नहीं।
जगत्पिता जीवोंका जोड़ा, सृष्टि चलाने करता है,
'टैक्स' नहीं लेता है उलटा, पेट सभीका भरता है॥

[३६]

तो भी करते पैशाचिक कृति, मानव होकर बुद्धिप्रवर,
दैव-धरोहरमे भी साझा, करके करते मूँछे तर।
निराकार निर्गुणने गुणमय, रचे मिथुन हैं नारी-नर,
बुद्धि उन्हे दी सदाचारसे, सृष्टि चलाओ जोड़ा कर॥

[३७]

इसी लिए व्यवहार परस्पर, सभ्योंने ठहराया है,
परसे लेना परको देना, कन्याकी यह माया है।
इसमे करना लोभ, दोष विश्वासघातका खासा है,
प्राकृत नियम तोड़कर मानो, देना प्रभुको झाँसा[1] है॥

[३८]

धनीराम बूढ़ेको फिरसे, बाला बना[2] बनाया है,
उसे देख कहते है कितने, स्वाँग कोई यह लाया है।
कितने ही कहते थे ओहो, उठी देह क्या मुई हुई !
कहा किसीने क्या अच्छी यह, ठिकरे पर है कलई हुई !!

[३९]

बना देखनेको सब दौड़े, जहाँ मिली जब खबर जिसे,
लगे लोग आपसमे कहने, बना कहे या नना[3] इसे !
इस प्रकार जिसने जब देखा, दूलहको धिक्कार दिया,
चम्पाका भवितव्य सोचकर, मनमे पश्चात्ताप किया॥

[४०]

इधर औरतें कहती थीं यह, "छैकौड़ीने किया अनर्थ,
कली निकलतीको तोड़ी है, बिना खिली जावेगी व्यर्थ।
जो हमसे कहते है अबला, उन पुरुषोंका देखा स्वार्थ !,
हालाहल विष घोल पिलावे, कहते हैं हम करें परार्थ॥

---

१ धोखा। २ दूल्हा। ३ नाना-मातामह।

[४१]

"बना कहें किस मुँहसे इसको, यह तो है बाबाका ब्याह,
बासी कढ़ी उबल आई है, इसकी कौन करेगा चाह।
हाय! हाय! छैकौड़ीने क्यों, घरवालीसे ली न सलाह,
नहीं कभी इस बूढ़े वरका, बाल-बधूसे होता ब्याह॥"

[४२]

जब समान होता है जोड़ा, तब होता है सच्चा प्रेम,
निभ जाते हैं सदाचारके, नियम और रहती है क्षेम।
नहीं मेल होता है सच्चा, जिनका जोड़ा हो अनमेल,
होती मसल 'जान चिड़ियाकी, जावे हो बच्चोंका खेल'॥

[४३]

"हो जाती है कन्या उसकी, पिता सौंप दे जिसके हाथ,
बेची हुई चली जाती है, जैसे गाय कमाई साथ।"
गरज किसीने नहीं सराहा, लेकिन तो भी हुआ विवाह,
बुझते हुए दीपकी लौ सम, धनीरामको हुआ उछाह॥

[४४]

नवल बधूसे चमक उठा फिर, बूढे वरका शयनागार,
किया ननदने जो थी बूढी, अपनी भावजका सत्कार।
धनीरामने बाल-बधूको, लाकर खूब किया उपहास,
चम्पा यहाँ बनी है आकर, बड़ी बड़ी बहुओंकी सास'

[४५]

बड़े बड़े बेटोंने उसका, 'माता' कह सम्मान किया,
बराबरीके पोतोंने भी, आकर उसको घेर लिया।
ऊपरसे तो खुशी हुए सब, मनमें हो सो जाने राम,
धनीराम थे अति आनन्दित, सार्थ समझ कर अपना धाम॥

तृतीय परिच्छेद।

[१]

उस दिन उनको लगा बीतने, एक एक पल मास समान,
द्रुपद-सुताके वसन सरीखा, समझ पड़ा बढ़ता दिनमान।
भीतर जाकर घड़ी देखते, तब लेते थे ठण्डी साँस,
बाहर देख चढ़े सूरजको, हो जाते थे और उदास॥

[२]

राम राम कर किसी तरहसे, हुआ मनोहर सांध्य-विकाश,
धनीराम बूढ़ेके मनमें, हुआ हर्षका क्षीण-प्रकाश।
जब व्यालूके लिए कहा तो, बोले हँसकर सेठ वहीं,
नहीं, आज मैं नहीं खाऊँगा, मुझे भूख है जरा नहीं॥

[३]

लेट गये फिर शयन-भवनमें, करते हृदय विचार रहे,
पड़े पड़े लेकिन चुपके ही, तकते घरका द्वार रहे।
नरम बिछोना बिछा हुआ था, दमक रहा था दीपप्रकाश,
पान-मसाले धरे हुए थे, सजा हुआ था रति-आवास॥

[४]

दिनमें ही सखियोंने करके, आपसमें कुछ मंत्र-विचार,
बता दिया था नव दुलहीको, यही तुम्हारा शयनागार।
धीरे धीरे निकल गया जब, प्रथम निशाका प्रथम चरण,
अपने अपने शयन-भवनमें, सब लोगोंने लिया शरण॥

[५]

नव-दुलहीके पास सखी दो, और उसीकी रही ननद,
उन तीनोंने मिल कर उस पर, तत्क्षण डाली नई विपद।
लाईं उसको रंग-भवन तक, सोनेका बतला कर व्याज,
पौढ़े हुए जहाँ पहलेसे, थे उसके बूढ़े पतिराज॥

[६]

नील गगनके रम्यचन्द्रसा, देख प्रियाका चन्द्र वदन,
केवल नयन-सिन्धुमें उनके, लगा मारने लहर मदन।
बड़े प्यारसे कहा ननदने, "भावज अब आराम करो,
करके शयन आज इस गृहको, और अधिक सुख-धाम करो"

[७]

इतना कहकर चाहा उसने, द्वार बंद कर दूँ घरका,
लिपट गई ननदीसे भावज, ज्यों सिवार लिपटे सरका।
बहुतेरा ननदीने चाहा, अंचल-छोर छुड़ा लूँ मैं,
भाईसे नवीन भावजको, कर चतुराई मिला दूँ मैं ॥

[८]

लाख बहाने और यत्न कर, ज्यों ज्यों उसे छुड़ाती थी,
सर-सिवार सी त्यों त्यों दुलही, और लिपटती जाती थी।
निष्फल यत्न देख भगिनीका, धनीराम कुछ खिन्न हुए,
पड़े पड़े जो सोच रहे थे, वे कल्पित सुख भिन्न हुए ॥

[९]

नहीं पड़ी जब चैन उठे तब, स्वयं मनानेको पतिराज.
दुलही दबी और भी जैसे, चिड़िया निकट देखकर बाज।
नवल-वधूका अंचल पकड़ा, जैसे द्रुपदसुताका चीर,
दुःशासनने पकड़ लिया था, करने हेतु उसे निर्श्चीर ॥

[१०]

धनीराम-दुश्शासनमें पर, अन्तर इतना समझ पड़ा,
इसमें था अनुराग-भाव अति, पर उसमें विद्वेष बढ़ा।
धनीरामजी फिर दुलहीसे, बोले हँस "मेरी प्यारी,
निरपराध पर युक्त नहीं है, नाराजी इतनी भारी ॥

[११]

"प्रथम-मिलनमें ही यदि ऐसी, तुमको मुझसे हुई अचाह,
तो कैसे जीवन भर प्यारी, होगा आपसमें निर्वाह।
देखे बिना तुम्हारे मैं था, बिना मोलका लिया गुलाम,
अब तो तुम्हीं हुई हो प्यारी, मेरी जीवन-सुख-विश्राम॥

[१२]

"एक नज़र ही ज़रा देख कर, रूप-सुधाका दे दो दान,
अथवा वचनसुधासे मेरे, हरे-भरे अब कर दो प्राण।
नहीं बताई क्या माताने, वह द्वापरकी कथा महान,
भीष्मसुता[1]ने कृष्णचन्द्रको, बिन देखे ठहराये प्राण॥

[१३]

"तब तो मै हाज़िर हूँ प्यारी, सब प्रकारसे होकर दास,
इतने पर होती हो मुझसे, तुम किस कारण कहो उदास।
क्या बालोंमें देख सफ़ेदी, तुमको कुछ होता है खेद,
समझ गया मै नहीं मिला है, अभी प्रेमका तुमको भेद॥

[१४]

"पीहरमे क्या नहीं सुना है, प्यारी तुमने यह इतिहास,
नेत्रहीन थे वृद्ध च्यवन ऋषि, जंगलमे था उनका वास।
उन्हें भूप शर्याति-कन्यकाने, अपनाया कर विश्वास,
कहा किसीका सुना नही कुछ, करता रहा लोक उपहास॥

[१५]

"इसी तरहसे हे प्यारी! अब, मेटो मेरा हृदय-विषाद,
हमसे तुम तुमसे हम लूटें, जीवन भर सुख शान्ति-प्रसाद।"
इस प्रकार शठ धनीरामने, मतलबकी सब कथा कही,
बेत-लताकी तरह काँपती, चम्पा भययुत खड़ी रही॥

---

[1] रुक्मिणी

[१६]

अगर देखता कोई उस क्षण, धनीरामको अड़े हुए,
तो कहता पोतीसे दादा, कहते है कुछ खड़े हुए।
एक ओर दो दासी भी थी, और सलज्जा बहिन खड़ी,
नहीं शरम आइ पर उसको, मानो मति पर धूल पड़ी॥

[१७]

लेकिन जो दुलही उस घरमें, स्वजन जनोंसे थी अज्ञात,
उतर गोदसे मांकी सीखा, करना, अभी अभी कुछ बात।
नहीं कामकी हवा लगी थी, अभी सर्वथा थी अज्ञात,
उसका केवल भय ही भयसे, हुआ स्वेदयुत सारा गात॥

[१८]

हौंस भरी आखोंसे पतिने, प्रेम भरे फैलाये हाथ
समझी चम्पा चले जायेंगे, प्राण इन्हीं हाथोंके साथ।
घबड़ाकर वह लगी देखने, मार्ग भागनेका ज्यों ही,
बूढेने चट चंचल होकर, पकड़ लिया अचल त्यों ही॥

[१९]

फिर चाहा अधीर अति बन कर, भर लूं इसको अपने अंक,
लिपट गई ननदीसे चम्पा, चीख मार संकुचित सशंक।
कांपी देह उधर बूढेकी, प्रेम-काम-उत्साह भरी,
इधर नवल दुलहीकी कांपी, रोष-त्रास अनचाह भरी॥



चित्रकार—श्रीयुक्त प गणेशराम मिश्र]

" बूढेने चट चंचल होकर पकड़ लिया अंचल त्योंही।"

(पृष्ठ २०)

चतुर्थ परिच्छेद ।

[१]

रही नहीं अब चम्पा निर्धन, कहलाती सेठानी है,
बालकपनका भोलापन भी, रहा नहीं अब स्यानी है ।
जब पहले आई थी चम्पा, बूढ़े पतिसे डरती थी,
विवश पास जाती थी तब भी, बात नहीं कुछ करती थी॥

[२]

लेकिन अब है बात नहीं वह, सब उल्टा परिणाम हुआ,
सेवक बदल हुआ है स्वामी, स्वामी आज गुलाम हुआ।
निष्प्रभ हुए सेठजी अब हैं, नहीं कामका है अनुराग,
जल जाता है सूखा ईंधन, थोड़ीसे पाकरके आग ॥

[३]

चम्पाकी वय बढनेसे ही, बढ़ी कामकी चाह अपार,
कहीं रोक सकता है कोई, बढ़ती हुई नदीकी धार ।
मिलती नहीं सुशिक्षा तब तो, बढ जाता है दूषित राग,
पथ नहीं मिलता है जिसको, वही करे सीमाका त्याग ॥

[४]

अन्य ज्वरोंसे कामज्वरका, बड़ा भयंकर होता ताप,
जो अभाग्यसे उसमें पड़ता, होता उसे विषम परिताप ।
धनीरामका एक 'छबीला', नामक था विश्वासी दास,
सम्हल रहा था अभी अभी वह, चहरे पर था ओज-विकाश ॥

[५]

पड़ी नजर चम्पाकी उस पर, ज्ञान हाथसे गया निकल,
नयनबाणसे आहत होकर, उधर छबीला हुआ विकल ।
वीणानाद श्रवण कर जैसे, प्राण निछावर करे हिरन,
दीपकज्योति देख कर जैसे, अर्पण करे पतंग तन ॥

[६]

वैसे ही उन दोनोंके मन, त्वरित गये दोनोंसे मोह,
सच तो है कैसे रह सकता, बिना खिंचे चुम्बकसे लोह।
मन-तुरंग दोनोंके छूटे, तोड़ तोड़कर लाज-लगाम,
धर्म विचारा गिरा टिका नहिं, हुआ प्रबल आरोही काम॥

[७]

सचमुच काम क्रोध-मद-मत्सर, लोभ, मोहका है सरदार,
सज्ञानी जीवोंका भी जो, कर लेता है सहज शिकार।
किसी तरह भी नहीं कामके, बलका वर्णन हो सकता,
भूल गये जप तप सब नारद, देख मोहिनी[1]-सुन्दरता॥

[८]

यद्यपि शुक्र-सुता[2] थी लेकिन, कचका देख रूप-तारुण्य,
मोह गई वह त्वरित भूल सब, क्या है पाप और क्या पुण्य।
गरज चार आँखोंके होते, बढ़ा परस्परका अनुराग,
भड़क उठे पल भरमें जैसे, ईंधन पर पड़ते ही आग॥

[९]

अगर कामको अनल कहे तो, जीव विचारे सूखे तृण,
और कदाचित् कहें सरित तो, वे उसके तटके रजकण।
अगर कमलगण उन्हें कहें तो, वह हिमऋतुका दुष्ट तुहिन,
और अगर चन्दन-वन वे तो, समझो उसे कुठार कठिन॥

[१०]

कोइ नही बच सकता इससे, लेता है यह सबको मार,
बड़े बड़े मुनि देव आदि जो, पड़े सामने हुए शिकार।
हाँ, केवल उन ही पर इसका, चलता नहीं कोई भी दाव,
शम दम-नियम आदिसे जिनने, किया सुसंस्कृत स्वयं स्वभाव

१ माया नगरीकी शीलनिधि-सुता विश्वविमोहिनी। २ देवयानी।

[११]

ज्ञानरहित तब चम्पा अबला, रहती कैसे कहो सँभल ?
और छबीलाका किस बलसे, रह सकता था क्षेम-कुशल।
आँखें पहले मिलीं, मिला मन, हुए परस्पर युगल अभिन्न,
धर्मरत्न दुर्लभ खोकर भी, देखो, दोनों हुए प्रसन्न ॥

[१२]

दास नही अब रहा छबीला, नही स्वामिनी चम्पा अब,
दो तनमें मन एक रहा रम, है मनोज-अनुकम्पा अब।
धनीरामकी रोपी विषमय, लता हुई फलवाली अब,
बड़ा भाग्यशाली है बूढ़ा, करता है रखवाली अब ॥

[१३]

नहीं खबर भोंदूको लेकिन, जिसे कहूँ मैं अपना बाग,
उसमे किसी भ्रमरने आकर, लगा लिया अपना अनुराग।
जिसका कल तक पति ही जीवन, पति ही था नैसर्गिक राज,
ओह ! उसी चम्पाका प्रियतम, हुआ उसीका सेवक आज॥

[१४]

धीरे धीरे बढ़ा और भी, इस नवदम्पतिका अनुराग,
मन ही मनमें धनीरामसे, दोनोंका बढ़ गया विराग।
कितने दिन तक छिपा छिपा यह, रह सकता था प्रेम-निधान,
हुआ प्रकट पर लोक लाजसे, धनीराम बन गया अजान॥

[१५]

लगा खटकने लेकिन उसको, उन दोनोंका प्रेम-प्रसार,
सच तो है रह सकतीं कैसे, 'एक म्यानमे दो तलवार'
जिसे समझता धनीराम था, है मेरा विश्वासी दास,
आज उसीको देखा उसने, बना हुआ है कपट-निवास ॥

[१६]

नहीं मूर्खने सोचा लेकिन, यह तो है मेरा ही दोष,
जो अपने हाथोंसे अपना रक्खा काल आप ही पोष।
चौथेपनमें शादी करके, की है मैंने भारी भूल,
मिले कहाँसे शीतल छाया, बोया है जब वृक्ष बबूल ॥

[१७]

धनीरामके पुत्रोंको जब, ज्ञान हुआ यह सारा पाप,
किसी बहाने हुए पृथक् पर, मिटा नहीं उनका संताप।
देश-काल-पत लोक-लाज, निज धर्म आदिका करके ध्यान,
कहा नहीं कुछ पितारामसे, किसी नगरको किया प्रयाण ॥

[१८]

धनीरामको अब अधिकाधिक, लगी जलाने चिन्ता ज्वाल,
उक्ति हुई चरितार्थ उसे यह, 'जिये बेशरम बुरे हवाल'।
यद्यपि उसने दास छबीला, अपने घरसे दिया निकाल,
लेकिन उन दोनोंके मनसे, दोनोंको नहि सका निकाल ॥

[१९]

घटा नहीं रत्तीभर उलटा, बढा और भी प्रेम अमन्द,
कभी अँधेरे कभी उजेले, रहे लूटते वे आनन्द।
सच है अगर कभी छिप जावे, मेघ-पटलके कारण चन्द,
तो चकोरका बाल बराबर, प्रेम नहीं होता है मन्द ॥

[२०]

चम्पाकी थी 'लीला' दासी, दूतीपनमें बड़ी प्रवीण,
जब वह विकल देखती, उसको, कर देती थी चिन्ता क्षीण।
जब लीलाकी तरुणाईका, दर्शनीय था रूप-उभार,
तब रसिकोंको रसके वितरण, करनेमें थी बड़ी उदार ॥

[२१]

यद्यपि तरुणपना जानेसे, नही रहा अब वैसा रंग,
लेकिन मनमे बनी हुई है, वैसी ही रुचि-चाह-उमंग।
बूढ़ेपनके आ जानेसे, उसका बदला नहीं स्वभाव,
बरन् और अनुभव बढ़नेसे, खूब समझती है वह दाव॥

[२२]

किसी कलामे कुशल कोई हो, हो जाता वह यद्यपि वृद्ध,
तो भी युक्ति बता औरोंको, कार्य करा देता है सिद्ध।
है यह नियम पुराना जिसकी, जिसमे होती चाह अपार,
नही स्वयं कर सके उसे जब, तब चेले करता तैयार॥

[२३]

कुशल देख चेलोंको अपने, होता उसे परम संतोष,
मानो जैसे भरा हुआ हो, किसी धनीका धनसे कोष।
इसी लिए कुशला लीलाने, कर चम्पाको अपने हाथ,
मिला दिया था छैल छबीला, अब भी कर देती थी साथ॥

[२४]

लेकिन रहना दूर दूरका, कभी कभीका होना संग,
नवल प्रिया-प्रीतमका यह दुख, करता था सारा सुख भंग।
गरज त्राण कैसे हो इससे, उन तीनोंमे हुई सलाह,
इसी तरहसे कैसे कब तक, छिपे छिपे होगा निर्वाह?॥

[२५]

निश्चित फिर क्या किया उन्होंने, वह तीनों ही जाने आप,
लेकिन इतना समझ पड़ा कुछ, दूर हुआ उनका परिताप।
धनीरामका वही काम है, वही द्रव्य है वे ही दास,
लेकिन उसको नही सुहाता, रहता है मन सदा उदास॥

[२६]

वह चाहे आराम मिले पर, मिलता है आराम नहीं,
सुखका सब सामान उपस्थित, लेकिन सुखका नाम नहीं।
अब समक्ष चम्पाके उसके, उठते भी हैं नैन नहीं,
ब्याह विना बेचैन आप थे, ब्याह किया तो चैन नहीं॥

[२७]

जड़को खोदें कहें आप ही, हरा हुआ यह बाग़ नहीं,
घी डालें फिर कहें मूढ़जन, बुझती है यह आग नहीं।
जो अनर्थ करते हैं उनका, रहता है धन-धाम नहीं,
बुरे कामका खूब जान लो, होता शुभ परिणाम नहीं॥

[२८]

अटल नियम यह जानो जिसकी, हो जाती है मेधा भ्रष्ट,
हो जाते हैं सब प्रकारसे, तब उसके विचार नि कृष्ट।
धनीरामने जब-यह सोचा, सचमुच बलसे हूँ लाचार,
तब अज्ञान-भूत फिर आकर, सिर पर उसके हुआ सवार॥

[२९]

खोज खोज विज्ञापन पढ़ना, रंग विरंगे चटकीले,
कर सकता था कौन तंग जो थे तनके बन्धन ढीले।
'शक्तिसुधा' की शीशी पीकर, कर डालीं कितनी खाली,
'पुष्टराजबटिका' भी खाई, कितनी ही मथुरावाली॥

[३०]

'ब्रह्मशक्ति' भी पीकर देखी, लाहौरी 'अमृतधारा',
'मदनमंजरी' भी सेवन की, भरम गवाँया पर सारा।
लगा लगाकर 'केशकल्प', मूँछोंका रंग किया काला,
मगर रहा जैसाका तैसा, सूखा मुँह झुर्रीवाला॥

[३१]

घुना बाँस पालिश करनेसे, नहिं हो सकता है मज़बूत,
चढ़ जानेपर उतर न सकता, समयागत सुस्तीका भूत।
नहीं हटाया हट सकता जब, बूढ़ापन आ जाता है,
बहा हुआ सरिताका पानी, लौट कहीं फिर आता है॥

[३२]

पुत्र पौत्र छूटे पर इसका, हुआ नहीं कुछ भी परिताप,
चम्पाको अपनाऊँ कैसे, यही सोच करते थे आप।
यही एक था ध्येय आपके, सम्मुख और यही कर्तव्य,
इससे अधिक और क्या शोभा, है इस चौथेपनकी भव्य॥



पञ्चम परिच्छेद।

[१]

सुना एक दिन सुबह अचानक, चम्पा घरसे गायब है,
नहीं किसीको खबर जरा भी, गई कहाँ कैसे कब है।
खुला पड़ा है रंगभवनका, द्वार पलँग भी खाली है,
घर जैसाका तैसा है पर, नहीं हाय! घरवाली है॥

[२]

सुनते ही दुस्समाचार यह, धनीराम गिर हुआ अचेत,
मानो उस पर पड़ा वज्र हो, आया उसे नहीं फिर चेत।
रमणीमोह विचित्र बड़ा है, देता सौख्य और सन्ताप,
मृगमोहक-संहारक जैसे, होता है वीणा-आलाप॥

[३]

प्रेमी और प्रेमिकामे जब, उभय ओरसे होता प्यार,
मर्त्यलोकमे भी मिलता है, उन्हे स्वर्गसम सौख्य अपार।
लेकिन नही सराही जाती, एक ओरकी अतिशय चाह,
शलभ प्राण दे देते जैसे, दीपकको नहि आती आह॥

[४]

धनीराम जिस दिन लाया था, चम्पाको अपने घर ब्याह,
रंग-भवनमे देख देख कर, उसे हुआ था अतुल उछाह।
उस दिन जैसी भरी रही थी, मनकी मनमे गहरी चाह,
वैसी आज अन्तमे उसके, मुँहसे निकली गहरी आह॥

[५]

क्या चाहा था हुआ हाय क्या, भावी बात अबूझी है,
बीते बिना बतावे कैसे, किसे कहाँ कब सूझी है।
बे-समझोकी चूक देखकर, सीखे वहीसु शिक्षित है,
बीते पर जो नही चेतते, वही बुद्धिसे विरहित है॥

[६]

धनीरामके देखो शवको, तकिया पलँग न बिस्तर है,
घरनीकी जंघाके बदले, पड़ा हाय ! धरनी पर है।
आज पासमें उसके कोई, बेटा-बहू न प्रियवर है,
जिसके लिए सहा था सब कुछ, नहीं वही चम्पा घर है॥

[७]

माता-पिता-भ्रात-पत्नी-सुत, मित्र भृत्य पर बात नहीं,
सोच देखिए देता कोई, कभी बुरेका साथ नहीं।
बिना विचारे किया जाय जो, पूरा हो वह काम नहीं,
जिसका आदि बुरा हो समझो, उसका शुभ परिणाम नहीं

[८]

सुना नगरवालोंने जब यह, धनीरामका अन्त हुआ,
सोच सोच उसकी करनीको, उन्हें दुःख अत्यन्त हुआ।
यद्यपि था वह बहुल-कुटुम्बी, पर न किसीने साथ दिया,
इससे सब पचोंने मिलकर, की उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया॥

[९]

भला हुआ जो धनीरामका, था मुनीम सच्चा शिवचन्द,
जिसने रक्खा धन रक्षा कर, पाला सेवकधर्म अमन्द।
ऐसे कहीं कहीं होते हैं, सत्यशील सेवक अत्यल्प,
वरना स्वामीके रहते धन, खा जानेवाले नहिं अल्प॥

[१०]

पिता-मरणका समाचार सुन, पुत्र-पौत्र सब हुए सशोक,
आये दौड़े सभी बिचारे, लोक-धर्म आचार विलोक।
पिता मृत्युका जन्मभूमिमें, आकर कच्चा हाल सुना,
शोक और लज्जासे सबने, पछता कर निज सीस धुना॥

१ गृहिणी।

[११]

मृतक कर्म शास्त्रोक्त किये सब, सम्पति पर अधिकार लिया,
पंके[1]-जात पंकज सम उसने, यश अपना विस्तार किया।
धनीरामके बदलेमें अब, 'विद्याधर' का नाम चला,
सब ही बन्धु योग्य थे तो भी, सबमें था यह बहुत भला॥

१ कीचड़में उत्पन्न हुए।

षष्ठ परिच्छेद ।

[१]

एक दिवस वर तिलक लगाये, करमें तुलसी-माल लिये,
विद्याधरके पास विराजे, थे कोई शुभ वेष किये ।
आया उनके पास अचानक, एक वृद्ध परदेशी दीन,
उसे देख कर हुआ त्वरित ही, आनन उसका कान्ति-विहीन॥

[२]

चाहा जाऊँ चला यहाँसे, हाथ जोड़ बोला तब वृद्ध,
"धन्य आप द्विजराज महोदय, धन्य आप ज्योतिषी प्रसिद्ध ।
धन्य आपकी दूरदर्शिता, धन्य आपका आशिर्वाद,
धन्य आपकी मीठी वाणी, धन्य आपका शास्त्रप्रसाद ॥

[३]

"आप धन्य गुण-वर्ण आदिसे, आप बाप सच्चोंके धन्य,
आप पूज्य हिन्दू-नर-नारी,- वृद्ध और बच्चोंके धन्य ।
सभी तरहसे आप महाशय, पदसे लेकर सिर तक धन्य,
धन्य आपसे आप स्वयं हैं, नही आपसा कोई अन्य ॥

[४]

"कहा आपका अक्षर अक्षर, आँखोंके आगे आया,
दोनों कुलकी लाज नाश की, इतने पर अपयश पाया ।
नाम आपका 'सूदन' सच्चा, यथा नाम गुण तथा भरा,
आप वस्तुतः सूदन सम्पद्, वंश-जाति-यश-धर्म-धरा ॥

[५]

"ऐसी चूक हुई है मुझसे, जिसका अब उपचार नहिं,
ऐसा हूँ निर्लज्ज हाय! मैं, मरनेको लाचार नहीं ।
बहुत दिनोंसे समाचार नहिं, मैंने चम्पाका पाया,
इसी लिए मैं उसे देखने, घबड़ाकर दौड़ा आया ॥

[६]

"हृदय थाम कर बेशर्मीने, सुना यहाँ जो हाल हुआ,
अपने नीच कर्म करनेका, आज मुझे है ख्याल हुआ।
लड़की गई जमाई बीता, धर्म-मान भी भंग हुआ।
धन चोरोंने हरण किया यों, भग हाय सब रंग हुआ॥

[७]

"जब तक हम लोगोंके अगुआ, अचल चित्त थे धर्म्म धुरीण,
तब तक कोई होता था नहिं, नीचकर्ममें ऐसा लीन
बननेको ब्रह्मर्षि किये, कितने, उपाय 'कौशिक' ने क्लिष्ट,
पर न हुआ जब तक सुपात्र वह रहे धर्म्मपर अड़े वशिष्ठ॥

[८]

"लेकिन अब तो टका धर्म है, टका कर्म है टका सखा,
टका मोक्षदायक है इससे, सबने उसको बड़ा लखा।
जिनके पास टका है उनको, विधि अलभ्य मिल जाती है,
जिनके पास टका है उनको, बात बनाना आती है॥

[९]

"जिनके पास टका प्राय. वे, आरतके नहिं आवे काम,
गुणी-कुटुम्बी उनके जीते, पा सकते नहिं एक छदाम।
हाँ अलबत्ता हो जाता है व्यय अनर्थमें उनका अर्थ,
शोक अयश-निन्दाको लेकर, खोते हैं वे जीवन व्यर्थ॥

[१०]

"बिना बिचारे किया काम जो, उसका फल मैंने पाया,
उजड़ गया जब फला बाग़ तब, पश्चात्ताप मुझे आया॥
मेरी निन्दित दशा देख कर, जो सज्जन जन चेतेंगे,
वे ऐसे अपमानके दिन भी, जगमें कभी न देखेंगे॥

[११]

लेकिन जो अज्ञानी अब भी, धर्म-लाज-यश खोवेंगे,
भोगेंगे वे यहाँ बहुत दुख, पड़े नरकमे रोवेंगे।
अनायास छैकोड़ीने यों, कच्चा चिट्ठा कह डाला,
छिपा हुआ जो अब तक था वह, भेद खुला शादीवाला॥

[१२]

रोने लगा बिचारा फिर तो, अनाचार पर पछताकर,
विद्याधरने विदा किया घर, उसे बहुत कुछ समझाकर।
सूदनजी भी बिना कहे कुछ, चले गये लज्जित होकर,
होते धनीराम यदि जीते, कभी न करते ऊँचा सिर॥

[१३]

जो कुलीन होते है वे तो, बहुत समझने थोड़ी बात,
नही समझते मगर बेशरम, बात कहो या मारो लात।
उस दिनसे बाहरका जाना, सूदनजीने छोड़ दिया,
वंश-गोत्र-ग्रह-दशा मिलाना, छोड़ साधुव्रत ग्रहण किया॥

सप्तम परिच्छेद ।

[१]

एक और है बात मजेकी, उसको सुनिए धरके ध्यान,
अभी अभी हैं हुए दिवाकर, अन्तरिक्षमें अन्तर्धान ।
लौट रही थीं गायें घरको, और बसेरेको खगवृन्द,
मद मद मुसकुरा रहा था, नील व्योममें दोयज-चन्द ॥

[२]

ऐसे समय कहींसे आया, किसी गाँवसे पथी एक,
नहीं ठहरने दिया किसीने, यद्यपि वह घर गया अनेक ।
करके दया एक युवतीने, दिया ठहरने उसे निदान,
डेरा धर ली साँस कहा फिर, "बाई, तेरा हो कल्याण" ॥

[३]

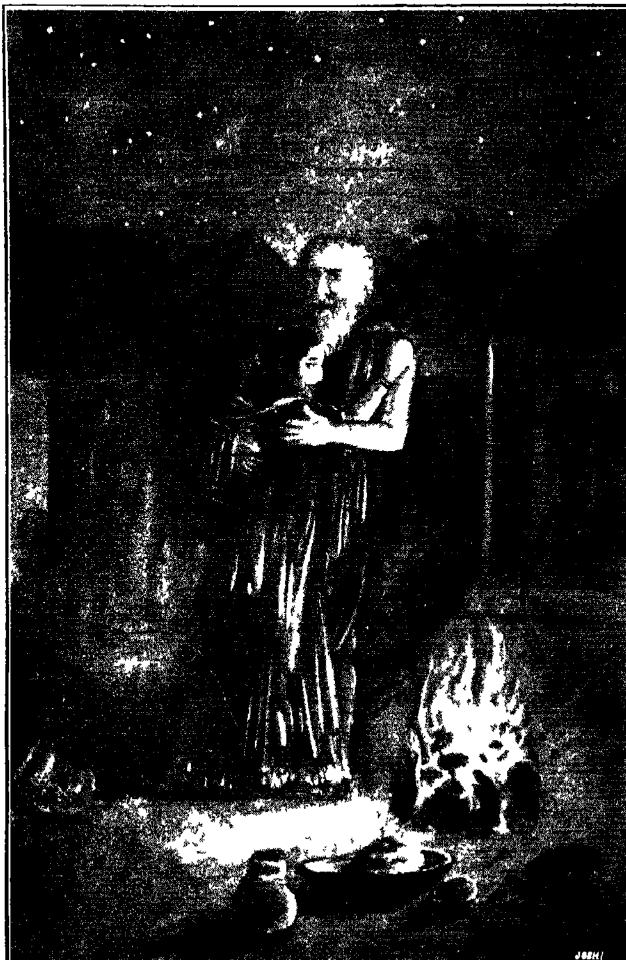
बोलचालसे सहमी युवती, और भ्रमी कुछ करके ध्यान,
लगी सोचने मनमें निश्चय, इससे मेरी है पहचान ।
दीपक वहाँ नहीं था जलता, शशिका था न यथेष्ट प्रकाश
इससे वह कुछ बोल सकी नहि, लेकिन लेती रही उसास ॥

[४]

जब रसोईके लिए अँगीठी, जली, हुआ तब वहाँ प्रकाश,
दूर हुआ विभ्रम युवतीका, लिपट गई वह आकर पास ।
छुड़ा हाथ झुंझलाकर तब तो, बोला वह हो दूर खड़ा,
री री अधमा!! करती है क्या, तू यह दुर्व्यवहार बड़ा ॥

[५]

उधर चीखकर रोई युवती, मुँहसे कुछ नहिं बोल सकी,
बढ़ी धकधकी इधर पान्थके, थकी देहकी बुद्धि थकी ।
चाहा लेकर डेरा डंडा, चला जाऊँ अन्यत्र कहीं,
लिपट गई फिर बोली रोकर, "पिता, कृपाकर रहो यहीं" ॥



[चित्रकार—श्रीयुक्त प गणेशराम मिश्र]

"मै हूं वही तुम्हारी चम्पा, जो प्राणोंसे प्यारी थी।"

(पृष्ठ ३०)

The Lakshmi Art ...

[६]

पास पड़ौसी आ पहुँचे सब, सुन दोनोंका कोलाहल,
जो आवे सो पूँछे "क्या है ?" हुआ बटोही बहुत विकल।
रोकर युवती कहती थी "यह, प्यारा बाप हमारा है,"
झुंझलाकर कहता था पथी, "यह कोई मक्कारा है" ॥

[७]

बला टालनेको कितने ही, यत्न किये उसने उस क्षण,
पर युवतीने पिंड न छोड़ा, लिपट गई मधु-मक्खी बन।
बिलख बिलख कर कहती थी वह, "नहीं धूर्तता की मैने,
किया दोष था पिता आपने, बदनामी सिर ली मैंने ॥"

[८]

"मै हूँ वही तुम्हारी बेटी, जिसे प्यारसे पाली थी,
मैं हूँ वही तुम्हारी चम्पा, जो प्राणोंसे प्यारी थी।"
लगे लोग आपसमे कहने, क्या बूढ़ा मतवाला है,
नही उसे ही पहचाने यह, जिसे गोदमें पाला है ॥

[९]

जब निश्चय हो गया पथिकको, तब कुछ कुछ वह शान्त हुआ,
सुतामोहसे किन्तु अभागा, खेदित-हृदय नितान्त हुआ।
कहा," दूर ओझल हो चम्पा, तूने वह दुष्काम किया,
प्रायश्चित्त न होवे जिसका, हाय ! व्यर्थ बदनाम किया ॥

[१०]

"तू कुलीनकी बेटी जैसी, थी वैसी पत्नी प्यारी,
छोड़ सुखोंको बदनामी ले, फिरती है मारी मारी।"
"जो जो कर्म किये है मैंने, कहते उन्हें लजाऊँ मैं,
तो भी सोच जगतका मंगल, बैठो तुम्हें सुनाऊँ मै ॥

[११]

"स्वार्थ-वारुणी पीकर तुमने, चश्मा लोभ लगाया जब,
भला-बुरा भूला कृत छोटा, बड़ा दृष्टिमे आया तब।
तब प्यारी थी तुम्हे बहुत मैं, हुण्डी समझ सकारी जब,
हुई नेकनामी थी कब जो, कहो हुई बदनामी अब॥

[१२]

"अगर समझते मुझे सुता तो, मेरे हितका रखते ध्यान,
नारीधर्म सिखाते मुझको, रहता उभय ओर कल्याण।
समझ वस्तु विक्रीकी मुझको, रक्षित रक्खा आठों याम,
आगा पीछा बिना विचारे, बेच दिया जब पाये दाम॥

[१३]

"धर्म गृहस्थीका न सिखाया, विद्या नहीं पढ़ाई कुछ,
नहीं भला व्यवहार बताया, कला नहीं सिखलाई कुछ।
पतिकी मर्जीमे चलनेकी, राह नहीं बतलाई कुछ,
लाज वंश-मर्याद धर्मकी. श्रद्धा नहीं दिखाई कुछ॥

[१४]

"जैसे मुझे प्यारसे पाला, वैसे ज्ञान सिखाते कुछ,
बोते अगर सुधा-लतिका तो, आज सुधा-फल पाते कुछ।
छोटेपनमें मेरे हितका, ध्यान अगर कुछ लाते तुम,
होती नहीं दशा यह मेरी, और नहीं पछताते तुम॥

[१५]

"नहीं सिखाया अगर मुझे था, तो ऐसे घर मेरा ब्याह,
करते जिससे नहीं उपजती, अपने पतिसे मुझे अचाह।
यम-आमंत्रित बूढ़े पति सँग, तरुणी शान्त रहे कैसे?
सहज करेला कडुआ है फिर, मिले नीमका संग उसे॥

[१६]

"बड़े बड़े दुख जितने जगमें, वे सब हो सकते है सह्य,
पर बूढ़े पतिका संगम है, तरुणीको सर्वथा असह्य।
बच्चोंके भावी जीवनके, उत्तरदाता है मा बाप,
कभी न होती ऐसी गति जो, देते मुझे सुशिक्षा आप॥

[१७]

"सब प्रकार सहती दुख रहती, अपने घरमें मनको मार,
पति-चरणोंकी सेवा करती, गुरु जनसे उत्तम व्यवहार।
क्यों करती कुलटाका कहना, क्यो करती परपतिसे प्यार,
क्यों खोती लज्जा क्यों करता, तिरस्कार मेरा संसार॥

[१८]

"जो मेरे थे पूज्य उन्हींका, मै समझी नहिं प्रेम अनूप,
हाय! उन्हीं सुखसदन स्वामिको, हुई पापिनी मैं दुखरूप।
तुच्छ समझ स्वामीको अपने, सेवकको समझी मैं भव्य,
उसी पापका बदला पाया, भोग रही हूॅ अब वैधव्य॥

[१९]

"जब तक मेरे पास एक भी, अलंकार परिधान रहा,
तब तक मेरे पास छबीला, मुझे प्रेमिका मान रहा।
कहॉ गया अब पता नहीं है, साथ गई उसके लीला,
मज़दूरी करके हूॅ जीती, मैं दुष्कर्मा दु:शीला॥

[२०]

"जब मैने ही ध्रुवको छोड़ा. होता अध्रुव मेरा क्यों?
प्यारेको जो छोड़े उसका, हो अनप्यारा प्यारा क्यों?
ऐसी हुई कलंकित मुॅहको, कैसे किसे दिखाऊॅ मैं,
जिसका जगमें पिटा ढिंढोरा, कैसे उसे छिपाऊँ मैं॥

[२१]

"अब आता है ऐसा जीमें, धरती फटे समाऊँ मैं,
पाप-मुक्तिके लिए इसी क्षण, गिरि पर चढ़ गिर जाऊँ मैं।
जीते जी ही छूट गये तुम, माता भी मेरी प्यारी,
मरने पर है नरक उपस्थित, जहाँ मिलेगा दुख भारी॥"

[२२]

कंठ हुआ अवरुद्ध चली फिर, आँसूकी अविरल धारा,
चम्पाका यह हाल देखकर छैकोड़ी सुध-बुध हारा।
सुनकर सारी कथा पड़ोसी, हँसे और कुछ पछताये,
उन दोनोंकी करते निन्दा, अपने अपने घर आये॥

[२३]

पड़ा रहा चुपचाप देर तक, रात रही जब कुछ थोड़ी,
पता आज तक मिला न उसका, कहाँ गया उठ छैकौड़ी।
इतना ही लिखना बस होगा, चम्पाकी कैसी बीती,
कुछ दिन और रही दुनियामें, बुरी तरहसे वह जीती॥

[२४]

उधर बिचारी चम्पाकी मा, लगी भूखसे जब मरने,
पाकर खबर किसीसे उसको, बुला लिया विद्याधरने।

उपसंहार।

सार कथाका भाई सोचो, यही ध्यानमें आता है,
बिना विचारे और लोभवश, जो करता पछताता है॥

[२५]

नारीका यह भाव सहज है, निकट पुरुष अपनाती है,
मिले पास जो विटप लताको, लिपट उसीसे जाती है।
ऐसा ही है हाल पुरुषका, वह तरुवरका भ्राता है,
जितनी जैसे मिलें लता वह, सबको ही अपनाता है॥

[२६]

लेकिन जो पाते है शिक्षा, उनमें आती गुरुता है,
उनका मन होता है हिमगिरि, नहीं हिलाये हिलता है।
सीताहरण किया पर रावण, शील न उसका छीन सका,
इसी तरह उर्वशी मोहसे, नही पार्थ-मन ज़रा डिगा ॥

[२७]

इसीलिए कहता हूँ भाई, शिक्षा का विस्तार करो,
देश-धर्मके साथ समय भी, देख देख व्यवहार करो।
नहीं फजीता होवे जिससे, नहीं कोइ उपहास करे,
धर्म-मान-यश आदि बढ़ें सब, घर घर सौख्यनिवास करे॥

[२८]

पति-पत्नीमें पूर्ण प्रेम हो, जिससे हों उत्तम सन्तान,
करें देशका जो मुख उज्ज्वल, रक्खें अपने कुलका मान।
अब इतिश्री करता हूँ पाठक, खूब हुआ बूढ़ेका ब्याह,
'मीर' कभी फिर हाजिर होगा, अगर आप देंगे उत्साह॥



हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज।

हिन्दीमे सर्व साधारणोपयोगी उच्चश्रेणीके ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिए हमने अपने कार्यालयकी एक शाखा खोली है और उसकी ओरसे फिलहाल एक ग्रन्थमाला प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया है। अब तक इसमे जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए है उनकी प्रत्येक हिन्दी-हितैषीने मुक्तकण्ठसे प्रशसा की है। छपाई, सफाई, कागज जिल्दबन्धी आदिके लिहाजसे भी इसका प्रत्येक ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर होता है।

जो लोग पेशगी आठ आने जमा कर इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होते है उन्हे प्रत्येक ग्रन्थ पौनी कीमतमे दिया जाता है। ज्यों ही कोई ग्रन्थ तैयार होता है त्यो ही आठ दिन पहले सूचना देकर वेल्यूपेबिलसे भेज दिया जाता है। वर्ष भरमे लगभग चार रुपयेके ग्रन्थ निकलते है।

नीचे लिखे ग्रन्थ तैयार हो चुके हैं —

स्वाधीनता

यह जॉन स्टुअर्ट मिलके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक है प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। इसके साथमे मूल ग्रन्थकर्त्ताका ६० पेजका महत्वपूर्ण जीवनचरित और दो चित्र है। इसके विषयमे शिक्षाके सम्पादक महाशय लिखते है,—"हमें यह आशा नहीं है कि हिन्दीमे ऐसी पुस्तक छपेगी जो इसकी समता कर सके।" इससे आप इस पुस्तकके महत्त्वका अनुमान कर सकते है। पक्की सुनहले अक्षरोकी जिल्दका मूल्य २)

प्रतिभा

यह एक बंगालके नामी उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है । हिन्दीमें शायद इसके जोड़का उपन्यास अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ । इसके विषयमें अभ्युदयके निष्पक्ष सम्पादक महाशय कहते हैं कि "ऐसा भावपूर्ण और शिक्षाप्रद उपन्यास शायद ही कभी पहले हमारे सम्मुख आया हो । प्रतिभाका चरित्र भारतीय रमणियोंके लिए आदर्शस्वरूप है । लेखकने मनुष्यके मनोभावोंको पहचाननेमें प्रशंसनीय कौशल दिखलाया है । भाषा इसकी बहुत ललित है ।" श्रीव्येंकटेश्वरसमाचारके सम्पादक लिखते है —"भारतमें जो नया भाव नयी ज्योति और नयी आकांक्षाका आविर्भाव हुआ है उसकी लहर, उसके प्रकाश और उसके साधनसे यह उपन्यास शराबोर है । अच्छे अच्छे और समयानुकूल विचार इसमें भरे पड़े है ।" मूल्य सादी जिल्दका १) (पक्की खतम हो गई) ।

फूलोंका गुच्छा

इसमें सुन्दर और भावपूर्ण ११ गल्पोंका संग्रह है । सरस्वतीसम्पादक इसका परिचय देते हुए कहते हैं —"हि० ग्र० रत्नाकर बड़ी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है । आख्यायिकारूप कलियोंका यह गुच्छ उसकी चौथी पुस्तक है । अच्छे कागज पर मनोहर टाइपमें यह छपा है । मुखपृष्ठ रंगीन अतएव बहुत ही मनोभिराम है । भाषा सरल और शुद्ध हिन्दी है । कहानियाँ हृदयाकर्षक और निर्दोष है ।" मूल्य दश आना ।

आँखकी किरकिरी

इसके विषयमें केवल इतना ही कहना काफी होगा कि यह संसारके सबसे नामी कवि और लेखक डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध उपन्यासका हिन्दी

अनुवाद है। मानसिक भावोंका इतना सुन्दर चित्र आपको और किसी उपन्यासमे न मिलेगा। कथा भी इसकी बहुत रसीली है। मूल्य सादी जिल्द का १॥) (पक्की नहीं रही)

चौबेका चिट्ठा

यह सुप्रसिद्ध बंगाली लेखक बाबू बकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके एक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। मनोरजक शिक्षाप्रद साहित्यम इसकी जोड़का यही ग्रन्थ है। सद्धर्मप्रचारक लिखता है —"इस ग्रन्थमे लेखकने चिदानन्द चौबेका रूप धारण करके भिन्न २ विषयो पर अपने आन्तरिक भाव प्रकट किये है। भावोका विषयक्षेत्र बडा विस्तृत है। ईश्वर, प्रकृति, मृत्यु जैसे जटिल विषयोंसे लेकर भारतकी राजनीति, अदालतोकी जिरह आदि हलके विषयो तककी मनोरजक व्याख्या इस ग्रन्थमे की गई है, पर वस्तुत यह एक तरहका गभीर हास्यरसपूर्ण काव्य है। बकिम उपन्यास लेखक था, कवि था, दार्शनिक था और विनोदपूर्ण लखोंके लिखनेमे भी सिद्धहस्त था। इस ग्रन्थमे वह अपने सभी रूपोंमे प्रकट हुआ है। मूल्य सादी जिल्दका ॥=)

मितव्ययिता

इसका दूसरा नाम किफायतशारी है। यह सुप्रसिद्ध लेखक डा० सेमुएल स्माइल्सके अगरेजी ग्रन्थ थ्रिफ्टका अनुवाद है। इस फिजूलखर्ची और विलासिताके जमानेमें यह ग्रन्थ प्रत्येक भारतवासीके नित्य स्वाध्याय करनेके योग्य है। अमीरों और धनवानोके लिए तो यह परम कल्याणकारी है। इसे पढकर चाहे जैसा फिजूलखर्च होगा मितव्ययी बन जावेगा। भाषा इसकी बहुत ही सीधी सादी लिखी गई है। पाठशालाओंमें पढाने और पारितोषिकमे देने योग्य है। मूल्य चौदह आने।

स्वदेश

श्रीयुक्त डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक निबन्धमालाका अनुवाद है । सब मिला कर आठ निबन्ध है । प्रत्येक निबन्धमे वे वे बाते कहीं है जिन्हें आपने कभी न सुना होगा । इसे पढकर आप भारतवर्षका और उसकी सभ्यता, समाजरचना और राजनीतिका असली स्वरूप देख सकेंगे । प्रत्येक स्वदेशाभिमानीके अध्ययन करने योग्य ग्रन्थ है । मूल्य दश आना ।

इनके सिवाय शान्तिकुटीर (उपन्यास), चरित्रगठन और मनोबल शिक्षा (डा० रवीन्द्रनाथकृत) आदि कई ग्रन्थ तयार हो रहे हैं ।

अन्यान्य स्थानोके उत्तमोतम ग्रन्थ भी हमारे यहॉ मिलते है । यथा—कविवर मैथिलीशरण गुप्तके काव्यग्रन्थ, भारत-भारती १) पद्यप्रबन्ध ॥=), जयद्रथवध काव्य ॥), मौर्यविजय ।), रगमे भग ।)। हिन्दीग्रन्थप्रसारक मण्डलीके, ठोक पीटकर वैद्यराज (प्रहसन) ।=)। समाज (रवीन्द्र बाबूकृत) ॥) । मनोहर सच्ची कहानियॉ ॥)। कहानियोंकी पुस्तक ।-), गृहिणीभूषण ॥) मेरे गुरुदेव (विवेकानन्दकृत) ।), स्वर्गीयजीवन (राल्फ वाल्डो टाइनकृत) ॥≈), स्वाधीनविचार (लाला हरदयाल एम ए कृत) ।), राष्टीयसन्देश (स्वा रामतीर्थकृत) ।=), सूर्यचक्र वेध १।), विद्यार्थीजीवनका उद्देश -) इत्यादि ।

नोट—सब जगहके सब तरहके छपे हुए जैनग्रन्थ हमारे यहॉ मिलते है ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग पो० गिरगॉव, बम्बई ।